REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 15 | ISSUE - 9 | JUNE - 2026

रत्नकुमार सांभरिया के कथा साहित्य में सामाजिक चेतना का अध्ययन

आरती साकेत
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. निर्मला साहू
सहायक प्राध्यापक हिन्दी
श्री दयाराम शिक्षा महाविद्यालय, सेमरिया, जिला रीवा (म.प्र.)

सारांश –

हिन्दी कथा–साहित्य का मूल उद्देश्य समाज और जीवन की जटिलताओं का यथार्थपरक चित्रण करते हुए मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करना रहा है। साहित्यकार अपने समय, समाज और परिवेश से प्राप्त अनुभवों को वैचारिक दृष्टि के साथ अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार किसी भी साहित्यिक कृति का वैचारिक पक्ष और यथार्थ–बोध उसकी रचनात्मकता के दो महत्वपूर्ण आधार माने जाते हैं। वैचारिक पक्ष साहित्यकार की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय दृष्टि का परिचायक होता है, जबकि यथार्थ–बोध उसके जीवनानुभवों और सामाजिक यथार्थ की संवेदनात्मक तथा वस्तुगत अभिव्यक्ति का द्योतक है। समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य में रत्नकुमार सांभरिया ऐसे कथाकार हैं जिनके साहित्य में वैचारिक प्रतिबद्धता और यथार्थपरक दृष्टि का सशक्त समन्वय दिखाई देता है। रत्नकुमार सांभरिया का कथा–साहित्य भारतीय समाज की जटिल सामाजिक संरचनाओं, जातिगत विषमताओं, आर्थिक असमानताओं तथा सांस्कृतिक अंतर्विरोधों का सजीव दस्तावेज है। उन्होंने अपने कथा–साहित्य में दलित, वंचित और उपेक्षित वर्गों के जीवन–संघर्षों को केंद्र में रखकर सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया है। उनकी रचनाएँ केवल घटनाओं का विवरण प्रस्तुत नहीं करतीं, बल्कि उन घटनाओं के पीछे सक्रिय सामाजिक शक्तियों, वैचारिक संरचनाओं और सत्ता–संबंधों को भी उद्घाटित करती हैं। यही कारण है कि उनके कथा–साहित्य में यथार्थ–बोध केवल बाह्य परिस्थितियों का चित्रण न होकर सामाजिक चेतना और परिवर्तन की आकांक्षा से जुड़ा हुआ दिखाई देता है।

मुख्य शब्द – रत्नकुमार सांभरिया, हिन्दी कथा–साहित्य, समाज, जीवन की जटिलता एवं मानवीय मूल्य।

प्रस्तावना –

सांभरिया के कथा–साहित्य का वैचारिक आधार मुख्यतः समानता, सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा, लोकतांत्रिक मूल्यों तथा अम्बेडकरवादी चिंतन से निर्मित हुआ है। वे जाति–आधारित शोषण और भेदभाव के विरुद्ध स्पष्ट वैचारिक प्रतिरोध प्रस्तुत करते हैं तथा सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता पर बल देते हैं। उनकी कहानियों में दलित अस्मिता, आत्मसम्मान, संघर्षशीलता और अधिकार–बोध के स्वर प्रमुखता से उभरते हैं। साथ ही वे सामाजिक संबंधों की जटिलताओं, नैतिक मूल्यों के विघटन, बदलते सांस्कृतिक परिवेश तथा मानवीय संवेदनाओं के संकट को भी गहनता से चित्रित करते हैं।

रत्नकुमार सांभरिया का यथार्थ–बोध अनुभवजन्य और जीवन–सापेक्ष है। उन्होंने ग्रामीण और शहरी दोनों परिवेशों में व्याप्त सामाजिक विषमताओं, जातिगत दमन, आर्थिक अभाव, सत्ता के दुरुपयोग तथा मानवीय संघर्षों को अत्यंत प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्त किया है। उनके पात्र जीवन की कठोर परिस्थितियों से जूझते हुए दिखाई देते हैं, किंतु वे निराशा के प्रतीक नहीं बनते, बल्कि संघर्ष और परिवर्तन की चेतना के वाहक के रूप में उभरते हैं। इस प्रकार उनके कथा–साहित्य में यथार्थ केवल पीड़ा और अभाव का चित्रण नहीं है, बल्कि प्रतिरोध, जागरण और सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं का भी उद्घोष है।

साहित्य और समाज का संबंध अत्यंत घनिष्ठ एवं अन्योन्याश्रित है। साहित्य समाज की संरचना, उसके अंतर्विरोधों, संघर्षों तथा परिवर्तनशील प्रक्रियाओं का सृजनात्मक दस्तावेज होता है। सामाजिक चेतना साहित्य का एक महत्वपूर्ण आयाम है, जो समाज में व्याप्त समस्याओं, असमानताओं, संबंधों और मानवीय मूल्यों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करती है। सामाजिक चेतना का उद्देश्य केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण करना नहीं है, बल्कि सामाजिक विसंगतियों की पहचान कर उनके समाधान तथा एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना की दिशा में वैचारिक आधार निर्मित करना भी है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में सामाजिक चेतना के विविध रूप देखने को मिलते हैं, जिनमें शिक्षा, रोजगार, सामूहिक अन्तर्सम्बन्ध तथा भेदभाव जैसी समस्याएँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन और मानव विकास का सबसे प्रभावी माध्यम मानी जाती है। यह व्यक्ति को ज्ञान, विवेक, आत्मविश्वास तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना प्रदान करती है। विशेषतः वंचित और शोषित वर्गों के लिए शिक्षा सामाजिक मुक्ति तथा सशक्तिकरण का साधन है। किंतु भारतीय समाज में शिक्षा के अवसर सभी वर्गों को समान रूप से उपलब्ध नहीं रहे हैं। जाति, वर्ग, लिंग और आर्थिक असमानताओं के कारण अनेक समुदाय शिक्षा से वंचित रहे हैं। साहित्य में इन परिस्थितियों का चित्रण सामाजिक चेतना के महत्वपूर्ण पक्ष के रूप में सामने आता है, जो शिक्षा के लोकतंत्रीकरण और समान अवसरों की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

रोजगार भी सामाजिक चेतना का एक महत्वपूर्ण आयाम है। रोजगार व्यक्ति को आर्थिक आत्मनिर्भरता, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा सम्मानजनक जीवन प्रदान करता है। आधुनिक समाज में बेरोजगारी, श्रम–शोषण, आर्थिक असुरक्षा तथा अवसरों की असमानता गंभीर सामाजिक समस्याओं के रूप में विद्यमान हैं। विशेष रूप से दलित, आदिवासी तथा अन्य वंचित वर्ग रोजगार के क्षेत्र में अनेक प्रकार की चुनौतियों और भेदभाव का सामना करते हैं। साहित्य इन समस्याओं को उजागर करते हुए सामाजिक–आर्थिक न्याय की आवश्यकता पर बल देता है तथा श्रम और मानव गरिमा के महत्व को स्थापित करता है।

सामूहिक अन्तर्सम्बन्ध किसी भी समाज की सामाजिक संरचना का आधार होते हैं। परिवार, समुदाय, जाति, वर्ग तथा विभिन्न सामाजिक समूहों के मध्य स्थापित संबंध समाज की एकता और संगठन को प्रभावित करते हैं। स्वस्थ सामाजिक अन्तर्सम्बन्ध सहयोग, सह–अस्तित्व, समानता और मानवीय संवेदनाओं को विकसित करते हैं, जबकि असमानता और वर्चस्व पर आधारित संबंध सामाजिक तनाव और विघटन को जन्म देते हैं। साहित्य में सामूहिक अन्तर्सम्बन्धों का चित्रण समाज की वास्तविक स्थितियों को समझने तथा सामाजिक समरसता के महत्व को रेखांकित करने का कार्य करता है।

विश्लेषण –

भेदभाव सामाजिक चेतना के अध्ययन का अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। जाति, वर्ग, धर्म, लिंग, भाषा और आर्थिक स्थिति के आधार पर होने वाला भेदभाव सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए गंभीर चुनौती है। भारतीय समाज में विशेष रूप से जातिगत भेदभाव ने अनेक समुदायों को सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित रखा है। साहित्य ने इस भेदभावपूर्ण व्यवस्था का विरोध करते हुए समानता, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा की स्थापना का प्रयास किया है। सामाजिक चेतना से संपन्न साहित्य भेदभाव की संरचनाओं को उजागर करता है तथा समाज में परिवर्तनकारी दृष्टि का विकास करता है।

भारतीय समाज में शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन, आत्मसम्मान तथा सशक्तिकरण का सर्वाधिक प्रभावी माध्यम माना गया है। विशेषतः दलित समाज के संदर्भ में शिक्षा केवल ज्ञानार्जन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक दासता, जातिगत उत्पीड़न तथा आर्थिक पराधीनता से मुक्ति का उपकरण रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त समान अधिकारों, आरक्षण व्यवस्था तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के कारण दलित समुदाय में शिक्षा के प्रति अभूतपूर्व जागरूकता उत्पन्न हुई। इस जागरूकता ने दलित समाज को परंपरागत पेशागत बंधनों से मुक्त होकर नवीन अवसरों की ओर अग्रसर किया। रत्नकुमार सांभरिया का कथा–साहित्य इसी

सामाजिक परिवर्तन का सशक्त दस्तावेज है। उनके कथा–साहित्य में शिक्षा को दलित मुक्ति, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा आत्मनिर्भरता के प्रमुख साधन के रूप में चित्रित किया गया है। सांभरिया डॉ. भीमराव अम्बेडकर के मूल मंत्र–"शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो" को अपनी कहानियों में रचनात्मक रूप से मूर्त रूप प्रदान करते हैं।[1]

रत्नकुमार सांभरिया की प्रसिद्ध कहानी 'फुलवा' शिक्षा की परिवर्तनकारी शक्ति का अत्यंत मार्मिक चित्रण करती है। इस कहानी की नायिका फुलवा आर्थिक रूप से विपन्न तथा सामाजिक रूप से उपेक्षित दलित स्त्री है, किन्तु वह शिक्षा के महत्व को भली–भाँति समझती है। निर्धनता और अभावों के बावजूद वह अपने पुत्र राधामोहन की शिक्षा में किसी प्रकार की बाधा नहीं आने देती। फुलवा का यह संघर्ष केवल एक माँ का संघर्ष नहीं, बल्कि समूचे दलित समाज की उन्नति की आकांक्षा का प्रतीक है। उसके अथक परिश्रम और अटूट विश्वास का परिणाम यह होता है कि राधामोहन उच्च पद प्राप्त कर पुलिस अधीक्षक (एस.पी.) बन जाता है। कहानी में पंडिताइन का कथन–"अब तो पद और पैसे का जमाना है, जात–पाँत का नहीं"–दलित समाज में शिक्षा के माध्यम से आए सामाजिक परिवर्तन को रेखांकित करता है। यहाँ राधामोहन केवल एक पात्र नहीं, बल्कि शिक्षा द्वारा अर्जित आत्मसम्मान, सामाजिक प्रतिष्ठा और दलित चेतना का प्रतिनिधि बनकर उभरता है।[2]

इसी प्रकार 'एयरगन का घोड़ा' कहानी में शिक्षा को सामाजिक समानता और आत्मगौरव की स्थापना का माध्यम बताया गया है। कहानी का नायक भूरजी राम मानू (बी.आर. मानू) शिक्षा प्राप्त कर जेल अधीक्षक के पद तक पहुँचता है। बाल्यावस्था में उसे सामंती मानसिकता और जातिगत अपमान का सामना करना पड़ता है। जमींदार परिवार का पुत्र कीरचंद सिंह उसे अपने अधीनस्थ समझकर अपमानित करता है, किन्तु भूरजी के काका इस व्यवस्था का विरोध करते हुए जमींदार की सेवा छोड़ देते हैं और भूरजी को विद्यालय भेजने का निर्णय लेते हैं। शिक्षा के माध्यम से भूरजी न केवल अपनी सामाजिक स्थिति बदलता है, बल्कि उस व्यवस्था को भी चुनौती देता है जिसने उसे हीन समझा था। कहानी इस तथ्य को स्थापित करती है कि शिक्षा दलित समाज को आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी और सामाजिक रूप से सम्मानित बनाने की क्षमता रखती है।[3]

रत्नकुमार सांभरिया की बहुचर्चित कहानी 'बिपर सुंदर एक कीने' शिक्षा और योजनाबद्ध सामाजिक दृष्टि के महत्व को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। कहानी में श्यामूलाल और जीवण दो भाइयों के माध्यम से दलित समाज के भीतर व्याप्त सामाजिक अंतर्विरोधों तथा परिवर्तनशील चेतना का चित्रण किया गया है। बिरादरी के दबाव में जीवण परंपरागत चमड़े का व्यवसाय छोड़ देता है, जबकि श्यामूलाल अपने पुत्र दीदार की शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए सामाजिक बहिष्कार सहने का जोखिम उठाता है। वह जानता है कि शिक्षा ही उसके परिवार को सम्मानजनक जीवन प्रदान कर सकती है। परिणामस्वरूप दीदार उच्च शिक्षा प्राप्त कर राज्य प्रशासनिक सेवा में डी.वाई.एस.पी. बन जाता है। कहानी का यह प्रसंग स्पष्ट करता है कि सामाजिक उन्नति का मार्ग अंधपरंपराओं से नहीं, बल्कि शिक्षा, दूरदृष्टि और संघर्ष से प्रशस्त होता है। दीदार की सफलता के बाद वही समाज, जो कभी श्यामूलाल को अछूत समझकर तिरस्कृत करता था, उसके घर संबंध स्थापित करने के लिए उत्सुक दिखाई देता है। यह परिवर्तन शिक्षा और पद की सामाजिक शक्ति को उद्घाटित करता है।[4]

'धूल' कहानी में भी शिक्षा को दलित चेतना के विकास का महत्वपूर्ण आधार माना गया है। कहानी का पात्र हुलसीराम स्वयं अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने छोटे भाई धूलसिंह को पढ़ाता है। उसका त्याग और संघर्ष अंततः तब सार्थक होता है जब धूलसिंह भारतीय प्रशासनिक सेवा में अधिकारी बनता है। यहाँ शिक्षा व्यक्तिगत सफलता तक सीमित नहीं रहती, बल्कि समूचे परिवार और समुदाय के सामाजिक उत्थान का माध्यम बन जाती है। सांभरिया इस कहानी के माध्यम से यह संदेश देते हैं कि शिक्षा के प्रति समर्पण और दीर्घकालिक दृष्टिकोण दलित समाज को नई पहचान प्रदान कर सकता है।[5]

इसी क्रम में 'बात' कहानी दलित स्त्री चेतना और शिक्षा के संबंध को रेखांकित करती है। कहानी की नायिका सूरती अपने पति की मृत्यु के बाद अत्यंत विषम आर्थिक परिस्थितियों का सामना करती है, किन्तु वह अपने पुत्र राधू की शिक्षा को बाधित नहीं होने देती। उसके पति की अंतिम इच्छा थी कि राधू पढ़–लिखकर अधिकारी बने। सूरती इस स्वप्न को अपना जीवन–ध्येय बना लेती है। वह तमाम कठिनाइयों के बावजूद पुत्र के हाथ से पुस्तक नहीं छूटने देती। कहानी यह स्थापित करती है कि दलित समाज में शिक्षा के प्रति जागरूकता केवल पुरुषों तक सीमित नहीं है, बल्कि दलित स्त्रियाँ भी इसे सामाजिक मुक्ति और सम्मानजनक जीवन का आधार मानती हैं।[6]

इस प्रकार रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में शिक्षा दलित चेतना के केंद्रीय तत्व के रूप में उपस्थित है। उनके पात्र शिक्षा को केवल रोजगार प्राप्ति का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक असमानता के विरुद्ध संघर्ष, आत्मसम्मान की स्थापना और जातिगत बंधनों से मुक्ति का माध्यम मानते हैं। 'फुलवा', 'एयरगन का घोड़ा', 'बिपर सुंदर एक कीने', 'धूल' तथा 'बात' जैसी कहानियाँ इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि शिक्षा के माध्यम से दलित समाज अपनी नियति को बदलने, सामाजिक प्रतिष्ठा अर्जित करने तथा समानता आधारित समाज के निर्माण की दिशा में अग्रसर हो सकता है। सांभरिया का यह दृष्टिकोण अम्बेडकरवादी चिंतन की मूल भावना के अनुरूप है और दलित चेतना के प्रगतिशील स्वरूप को अभिव्यक्त करता है।

रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में रोजगार का प्रश्न केवल आर्थिक आजीविका तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक सम्मान, आत्मनिर्भरता, वर्गीय गतिशीलता तथा दलित अस्मिता के निर्माण से गहराई से जुड़ा हुआ है। भारतीय समाज में वर्ण–व्यवस्था ने सदियों तक दलित समुदाय को कुछ निश्चित और तथाकथित 'निम्न' व्यवसायों तक सीमित रखा, जिसके परिणामस्वरूप उनकी आर्थिक उन्नति तथा सामाजिक गतिशीलता अवरुद्ध रही। आधुनिक शिक्षा, संवैधानिक अधिकारों तथा आरक्षण नीतियों के प्रभाव से दलित समाज में रोजगार के नए अवसर उपलब्ध हुए, जिन्होंने उनकी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन की संभावनाएँ उत्पन्न कीं। सांभरिया का कथा–साहित्य इसी परिवर्तनशील सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करता है। उनके पात्र रोजगार को केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, सामाजिक पहचान तथा जातिगत बंधनों से मुक्ति के माध्यम के रूप में देखते हैं।[7]

सांभरिया की प्रसिद्ध कहानी 'फुलवा' रोजगार और सामाजिक प्रतिष्ठा के अंतर्संबंध को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। कहानी की नायिका फुलवा आर्थिक अभावों के बावजूद अपने पुत्र राधामोहन को शिक्षित करती है। शिक्षा के परिणामस्वरूप राधामोहन पुलिस अधीक्षक (एस.पी.) जैसे प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त होता है। यह रोजगार केवल व्यक्तिगत सफलता का प्रतीक नहीं है, बल्कि दलित समाज की सामूहिक आकांक्षाओं की पूर्ति का संकेत भी है। जिस समाज में कभी जातिगत पहचान व्यक्ति के मूल्यांकन का आधार थी, वहाँ अब पद और योग्यता सामाजिक सम्मान के नए मानदंड बनते दिखाई देते हैं। राधामोहन की प्रशासनिक सेवा में नियुक्ति यह प्रमाणित करती है कि सम्मानजनक रोजगार दलित समुदाय के सामाजिक उत्थान और आत्मविश्वास की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।[8]

'एयरगन का घोड़ा' कहानी में भी रोजगार सामाजिक परिवर्तन के एक प्रभावी उपकरण के रूप में सामने आता है। कहानी का नायक भूरजी राम मानू (बी.आर. मानू) शिक्षा प्राप्त कर जेल अधीक्षक के पद तक पहुँचता है। बचपन में वह जिस सामंती और जातिवादी व्यवस्था के अधीन अपमानित जीवन जीने को विवश था, वही व्यवस्था उसके प्रशासनिक पद प्राप्त करने के बाद चुनौती का सामना करती है। भूरजी की सफलता यह दर्शाती है कि आधुनिक रोजगार व्यवस्था दलित समुदाय को पारंपरिक शोषणकारी संबंधों से मुक्त करने की क्षमता रखती है। सांभरिया यहाँ रोजगार को सामाजिक गतिशीलता तथा आत्मसम्मान की पुनर्स्थापना के साधन के रूप में चित्रित करते हैं।[9]

इसी प्रकार 'बिपर सुंदर एक कीने' कहानी में रोजगार, शिक्षा और सामाजिक चेतना का त्रिकोणात्मक संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। श्यामूलाल अपने पुत्र दीदार की शिक्षा पर विशेष ध्यान देता है और सामाजिक बहिष्कार का जोखिम उठाते हुए भी उसे उच्च शिक्षा दिलाता है। परिणामस्वरूप दीदार राज्य प्रशासनिक सेवा में डी.वाई.एस.पी. बन जाता है। दीदार का यह रोजगार न केवल परिवार की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाता है, बल्कि पूरे गाँव में उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा स्थापित करता है। जो लोग कभी श्यामूलाल के परिवार को अछूत मानकर दूरी बनाए रखते थे, वही बाद में वैवाहिक संबंध स्थापित करने के लिए उत्सुक दिखाई देते हैं। यह परिवर्तन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि आधुनिक रोजगार व्यवस्था जातिगत अवरोधों को कमजोर करने और सामाजिक समानता की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।[10]

रत्नकुमार सांभरिया की 'धूल' कहानी में रोजगार को संघर्ष और त्याग के प्रतिफल के रूप में चित्रित किया गया है। हुलसीराम अपने छोटे भाई धूलसिंह की शिक्षा के लिए अनेक कठिनाइयाँ सहन करता है। अंततः धूलसिंह भारतीय प्रशासनिक सेवा में अधिकारी बनता है। यहाँ सरकारी रोजगार केवल आर्थिक उन्नति का माध्यम नहीं है, बल्कि सामाजिक सम्मान और सामुदायिक प्रेरणा का स्रोत भी है। धूलसिंह की सफलता यह संदेश देती है कि योजनाबद्ध प्रयास, शिक्षा और रोजगार के माध्यम से दलित समुदाय अपनी सामाजिक स्थिति में व्यापक परिवर्तन ला सकता है।[11]

'बात' कहानी में रोजगार की अवधारणा अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा और भविष्य की संभावनाओं से जुड़ती है। सूरती अपने पति की मृत्यु के पश्चात् अत्यंत कठिन परिस्थितियों में भी अपने पुत्र राधू की पढ़ाई जारी रखती है, क्योंकि वह जानती है कि शिक्षा ही उसे सम्मानजनक रोजगार और बेहतर जीवन प्रदान कर सकती है। इस प्रकार कहानी में रोजगार एक भविष्यगत आकांक्षा के रूप में उपस्थित है, जो दलित परिवारों को संघर्ष करने की प्रेरणा देता है।[12]

सांभरिया के कथा–साहित्य का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि दलित चेतना के विकास में रोजगार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके पात्र पारंपरिक जाति–आधारित व्यवसायों की सीमाओं को तोड़कर आधुनिक प्रशासनिक, शैक्षिक तथा सरकारी सेवाओं में प्रवेश करते हैं। यह परिवर्तन केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी महत्वपूर्ण है। रोजगार के माध्यम से दलित पात्र आत्मनिर्भरता प्राप्त करते हैं, सामाजिक सम्मान अर्जित करते हैं तथा अपनी नई पहचान निर्मित करते हैं। सांभरिया का साहित्य इस तथ्य को रेखांकित करता है कि शिक्षा और रोजगार दलित मुक्ति के दो ऐसे स्तंभ हैं, जिनके माध्यम से सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा की स्थापना संभव है। उनके कथा–पात्र डॉ. भीमराव अम्बेडकर की उस विचारधारा को साकार करते हैं, जिसमें शिक्षा, संगठन और संघर्ष के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की कल्पना की गई थी।[13]

रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में रोजगार केवल आर्थिक विकास का संकेतक नहीं है, बल्कि दलित चेतना, सामाजिक परिवर्तन और आत्मसम्मान की स्थापना का सशक्त माध्यम है। उनके साहित्य में चित्रित रोजगार संबंधी प्रसंग यह सिद्ध करते हैं कि सम्मानजनक रोजगार व्यक्ति को न केवल आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है, बल्कि उसे सामाजिक समानता और मानवीय गरिमा की अनुभूति भी कराता है। यही कारण है कि सांभरिया के कथा–साहित्य में रोजगार का प्रश्न दलित विमर्श के केंद्रीय सरोकारों में से एक बनकर उभरता है।

रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में दलित चेतना का एक महत्वपूर्ण पक्ष सामूहिक अन्तर्सम्बन्धों का चित्रण है। दलित विमर्श केवल व्यक्तिगत पीड़ा या संघर्ष का आख्यान नहीं है, बल्कि यह सामूहिक अनुभवों, सामाजिक सहभागिता, सामुदायिक एकता तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। सामाजिक जीवन में व्यक्ति अकेला अस्तित्व नहीं रखता, बल्कि वह परिवार, जाति, समुदाय, वर्ग तथा व्यापक सामाजिक संरचना का अंग होता है। इन सभी स्तरों पर स्थापित संबंध व्यक्ति की सामाजिक पहचान, उसकी चेतना और उसके संघर्षों को प्रभावित करते हैं। सांभरिया के कथा–साहित्य में दलित पात्रों के जीवन–संघर्षों के साथ–साथ उनके सामूहिक संबंधों का भी सशक्त चित्रण मिलता है, जो दलित समाज की एकजुटता, अंतर्विरोधों तथा परिवर्तनशील सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त करता है।[14]

रत्नकुमार सांभरिया की प्रसिद्ध कहानी 'फुलवा' में सामूहिक अन्तर्सम्बन्धों का सकारात्मक स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। कहानी की नायिका फुलवा केवल अपने पुत्र राधामोहन के भविष्य के लिए संघर्षरत एक माँ नहीं है, बल्कि वह दलित समाज की सामूहिक आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती है। राधामोहन की सफलता को व्यक्तिगत उपलब्धि के रूप में नहीं, बल्कि पूरे समुदाय की उपलब्धि के रूप में देखा जाता है। जब वह उच्च प्रशासनिक पद प्राप्त करता है, तब गाँव का सामाजिक व्यवहार भी परिवर्तित हो जाता है। जो लोग पहले जातिगत आधार पर दूरी बनाए रखते थे, वही बाद में सम्मान और निकटता का व्यवहार करने लगते हैं। यह परिवर्तन सामाजिक संबंधों की गतिशीलता तथा सामूहिक चेतना के विकास को रेखांकित करता है।[15]

'एयरगन का घोड़ा' कहानी में सामूहिक अन्तर्सम्बन्धों का एक अन्य स्वरूप दिखाई देता है। कहानी में भूरजी राम मानू और उसके परिवार का संघर्ष केवल व्यक्तिगत संघर्ष नहीं है, बल्कि सामंती एवं जातिवादी व्यवस्था के विरुद्ध पूरे दलित समुदाय के प्रतिरोध का प्रतीक है। भूरजी के काका का जमींदार की हवेली में टहलवाई का कार्य छोड़ देना केवल एक व्यक्ति का निर्णय नहीं, बल्कि शोषणकारी सामाजिक संबंधों के विरुद्ध विद्रोह का संकेत है। इसके पश्चात् भूरजी को शिक्षित करने का निर्णय सामूहिक चेतना और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होता है। कहानी यह स्पष्ट करती है कि जब समुदाय अपने सदस्यों के विकास के लिए सहयोग करता है, तब सामाजिक उन्नति की नई संभावनाएँ जन्म लेती हैं।[16]

'बिपर सुंदर एक कीने' कहानी सामूहिक अन्तर्सम्बन्धों की जटिलता तथा दलित समाज के भीतर विद्यमान अंतर्विरोधों को उजागर करती है। कहानी में जीवण और श्यामूलाल दो भाइयों के माध्यम से यह दिखाया गया है कि सामाजिक संबंध केवल सहयोग और एकता पर आधारित नहीं होते, बल्कि उनमें परंपरा, रूढ़ि और सामाजिक दबाव के तत्व भी विद्यमान रहते हैं। बिरादरी के निर्णय के सामने जीवण झुक जाता है,

जबकि श्यामूलाल अपने पुत्र दीदार की शिक्षा को प्राथमिकता देते हुए सामाजिक बहिष्कार का जोखिम उठाता है। इस प्रसंग में दलित समाज के भीतर मौजूद उपजातीय विभाजन और सामाजिक रूढ़ियों का चित्रण मिलता है। किंतु कहानी का अंत इस तथ्य को स्थापित करता है कि शिक्षा और सामाजिक प्रगति के माध्यम से सामूहिक संबंधों में सकारात्मक परिवर्तन संभव है। जब दीदार उच्च प्रशासनिक पद प्राप्त करता है, तब वही समाज जो कभी श्यामूलाल को तिरस्कृत करता था, उसके साथ सम्मानजनक संबंध स्थापित करने का प्रयास करता है।[17]

सांभरिया की 'धूल' कहानी में भाईचारे, सहयोग और पारिवारिक उत्तरदायित्व जैसे सामूहिक अन्तर्सम्बन्धों का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है। हुलसीराम अपने छोटे भाई धूलसिंह की शिक्षा और उन्नति के लिए निरंतर संघर्ष करता है। उसका त्याग केवल पारिवारिक दायित्व का निर्वहन नहीं है, बल्कि सामूहिक उन्नति की भावना का प्रतीक है। धूलसिंह की सफलता यह सिद्ध करती है कि सामाजिक और पारिवारिक सहयोग व्यक्ति की प्रगति में निर्णायक भूमिका निभाता है। कहानी यह संदेश देती है कि सामूहिक चेतना और पारस्परिक सहयोग सामाजिक परिवर्तन की आधारशिला हैं।[18]

'बात' कहानी में सामूहिक अन्तर्सम्बन्धों का भावनात्मक और मानवीय पक्ष सामने आता है। सूरती अपने पति की मृत्यु के पश्चात् आर्थिक कठिनाइयों से जूझते हुए भी अपने पुत्र राधू की शिक्षा जारी रखती है। इस संघर्ष में पति की स्मृतियाँ, पारिवारिक संबंध और भविष्य के प्रति सामूहिक आशा उसके संबल बनते हैं। यहाँ परिवार एक ऐसी सामाजिक इकाई के रूप में प्रस्तुत होता है, जो विपरीत परिस्थितियों में भी व्यक्ति को संघर्ष की शक्ति प्रदान करता है।[19]

रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में सामूहिक अन्तर्सम्बन्धों का चित्रण केवल दलित समाज के भीतर सीमित नहीं है, बल्कि दलित और सवर्ण समाज के बीच बदलते सामाजिक संबंधों को भी अभिव्यक्त करता है। उनके पात्र सामाजिक संवाद, संघर्ष और उपलब्धियों के माध्यम से ऐसे संबंधों का निर्माण करते हैं जो पारंपरिक जातिगत सीमाओं को चुनौती देते हैं। यह दृष्टि डॉ. भीमराव अम्बेडकर की बंधुत्व, समानता और सामाजिक लोकतंत्र की अवधारणा के निकट दिखाई देती है। सांभरिया के साहित्य में सामूहिक अन्तर्सम्बन्ध सामाजिक न्याय और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के महत्वपूर्ण घटक के रूप में उभरते हैं।[20]

रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में सामूहिक अन्तर्सम्बन्ध दलित चेतना के महत्वपूर्ण आयाम के रूप में उपस्थित हैं। उनके साहित्य में परिवार, समुदाय, बिरादरी, सामाजिक समूह तथा विभिन्न वर्गों के मध्य संबंधों का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। ये संबंध कभी सहयोग और एकता के रूप में तो कभी संघर्ष और अंतर्विरोध के रूप में सामने आते हैं। किंतु अंततः सांभरिया का कथा–साहित्य इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सामाजिक परिवर्तन, समानता और मानवीय गरिमा की स्थापना के लिए स्वस्थ एवं न्यायपूर्ण सामूहिक अन्तर्सम्बन्धों का निर्माण अनिवार्य है। यही उनके साहित्य की सामाजिक प्रासंगिकता और दलित चेतना का मूल आधार है।

रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में भेदभाव का प्रश्न दलित चेतना के केंद्रीय सरोकारों में से एक है। भारतीय समाज की जाति–आधारित संरचना ने सदियों तक दलित समुदाय को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्तर पर भेदभाव का शिकार बनाया है। यह भेदभाव केवल सामाजिक व्यवहार तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने दलितों की मानवीय गरिमा, आत्मसम्मान तथा सामाजिक अस्तित्व को भी गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। सांभरिया ने अपने कथा–साहित्य में इस यथार्थ को अत्यंत प्रामाणिकता और संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है। उनके कथा–पात्र भेदभाव की पीड़ा को केवल सहन ही नहीं करते, बल्कि उसके विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना भी विकसित करते हैं। यही कारण है कि उनका साहित्य दलित जीवन की त्रासदी के साथ–साथ संघर्ष और परिवर्तन की संभावनाओं का भी सशक्त दस्तावेज बन जाता है।[21]

रत्नकुमार सांभरिया की चर्चित कहानी 'एयरगन का घोड़ा' जातिगत भेदभाव की भयावहता को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। कहानी का नायक भूरजी राम मानू बचपन से ही सामंती और जातिवादी व्यवस्था का शिकार होता है। जमींदार परिवार का पुत्र कीरचंद सिंह उसे अपने से निम्न समझते हुए अपमानित करता है और उससे गुलामों जैसा व्यवहार करता है। यह व्यवहार केवल व्यक्तिगत अहंकार का परिणाम नहीं है, बल्कि उस सामाजिक संरचना का द्योतक है जिसने जातिगत श्रेष्ठता और हीनता को वैधता प्रदान की है। किंतु शिक्षा प्राप्त कर जेल अधीक्षक बनने के पश्चात् भूरजी की सामाजिक स्थिति बदल जाती है। कहानी यह स्पष्ट करती है कि भेदभाव के विरुद्ध शिक्षा और आत्मनिर्भरता सबसे प्रभावी हथियार हैं।[22]

'फुलवा' कहानी में भी जातिगत भेदभाव का चित्रण अत्यंत मार्मिक रूप में हुआ है। फुलवा एक दलित स्त्री है, जो सामाजिक उपेक्षा, आर्थिक अभाव और जातिगत तिरस्कार के बीच अपने पुत्र राधामोहन को शिक्षित करती है। समाज में उसकी पहचान उसकी जाति से निर्धारित होती है, किंतु जब राधामोहन उच्च प्रशासनिक पद प्राप्त करता है, तब वही समाज उसके प्रति सम्मान का भाव प्रदर्शित करने लगता है। कहानी यह संकेत करती है कि भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव के बावजूद शिक्षा और पद सामाजिक संबंधों को परिवर्तित करने की क्षमता रखते हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि जाति–व्यवस्था का प्रभाव इतना गहरा है कि व्यक्ति की योग्यता को भी अक्सर उसकी सामाजिक पहचान के आधार पर आँका जाता है।[23]

रत्नकुमार सांभरिया की प्रसिद्ध कहानी 'बिपर सुंदर एक कीने' दलित समाज के भीतर विद्यमान आंतरिक भेदभाव और उपजातीय विभाजनों को उजागर करती है। कहानी में जीवण और श्यामूलाल के माध्यम से यह दिखाया गया है कि भेदभाव केवल सवर्ण और दलित समुदायों के बीच ही नहीं, बल्कि दलित समाज के भीतर भी मौजूद है। बिरादरी के नियमों और सामाजिक रूढ़ियों के कारण श्यामूलाल को सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। उसके साथ होने वाला व्यवहार इस तथ्य को रेखांकित करता है कि जातिगत मानसिकता समाज के विभिन्न स्तरों पर कार्य करती है। किंतु दीदार की प्रशासनिक सफलता के बाद वही समाज उसके परिवार को सम्मान देने लगता है। यह परिवर्तन सामाजिक चेतना के विकास और भेदभावपूर्ण मानसिकता के क्षरण का संकेत है।[24]

'धूल' कहानी में भेदभाव के आर्थिक और सामाजिक दोनों पक्षों का चित्रण मिलता है। हुलसीराम और धूलसिंह का जीवन इस बात का उदाहरण है कि दलित समुदाय को अवसरों की समानता प्राप्त करने के लिए सामान्य से अधिक संघर्ष करना पड़ता है। सामाजिक उपेक्षा और संसाधनों के अभाव के बावजूद वे शिक्षा और परिश्रम के माध्यम से सफलता प्राप्त करते हैं। कहानी यह संदेश देती है कि भेदभाव की संरचना व्यक्ति की प्रगति में अनेक बाधाएँ उत्पन्न करती है, किंतु दृढ़ संकल्प और संघर्ष से उन बाधाओं को पार किया जा सकता है।[25]

'बात' कहानी में दलित स्त्री के जीवन में उपस्थित बहुआयामी भेदभाव का चित्रण किया गया है। सूरती को एक ओर आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ता है तो दूसरी ओर सामाजिक उपेक्षा का भी। पति की मृत्यु के बाद वह अपने पुत्र राधू की शिक्षा को जारी रखने के लिए संघर्ष करती है। उसका जीवन यह दर्शाता है कि दलित स्त्रियाँ जाति और लिंग दोनों स्तरों पर दोहरे भेदभाव की शिकार होती हैं। सांभरिया इस कहानी के माध्यम से दलित स्त्री जीवन की जटिलताओं और उसके संघर्षशील व्यक्तित्व को सामने लाते हैं।[26]

रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में भेदभाव केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण नहीं है, बल्कि उसके विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना भी है। उनके पात्र अपमान और वंचना को अपनी नियति मानकर स्वीकार नहीं करते, बल्कि शिक्षा, संघर्ष, संगठन और आत्मसम्मान के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करते हैं।[27] यह दृष्टि स्पष्ट रूप से डॉ. भीमराव अम्बेडकर की समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व पर आधारित विचारधारा से प्रेरित है। सांभरिया का साहित्य यह स्थापित करता है कि भेदभाव मानवता के विरुद्ध अपराध है और इसका उन्मूलन सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए अनिवार्य है।

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि रत्नकुमार सांभरिया के कथा–साहित्य में भेदभाव का चित्रण दलित चेतना के विकास का महत्वपूर्ण आधार है। उनके साहित्य में जातिगत, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक भेदभाव के विविध रूपों का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। साथ ही वे यह भी सिद्ध करते हैं कि शिक्षा, आत्मसम्मान, संगठन और संघर्ष के माध्यम से भेदभावपूर्ण सामाजिक संरचनाओं को चुनौती दी जा सकती है। इस प्रकार उनका कथा–साहित्य सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और समानता की स्थापना का सशक्त साहित्यिक हस्तक्षेप बनकर सामने आता है।

संदर्भ –

[1] सांभरिया, रत्नकुमार. प्रतिनिधि कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2013, पृ. 15–18.

[2] सांभरिया, रत्नकुमार. फुलवा एवं अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2010, पृ. 42–49.

[3] सांभरिया, रत्नकुमार. एयरगन का घोड़ा. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 56–64.
[4] सांभरिया, रत्नकुमार. बिपर सुंदर एक कीने. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2014, पृ. 71–82.
[5] सांभरिया, रत्नकुमार. धूल तथा अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2011, पृ. 33–40.
[6] सांभरिया, रत्नकुमार. बात. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 88–94.
[7] सांभरिया, रत्नकुमार. दलित जीवन की प्रतिनिधि कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2013, पृ. 22–25.
[8] सांभरिया, रत्नकुमार. फुलवा एवं अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2010, पृ. 42–49.
[9] सांभरिया, रत्नकुमार. एयरगन का घोड़ा. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 56–65.
[10] सांभरिया, रत्नकुमार. बिपर सुंदर एक कीने. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2014, पृ. 71–83.
[11] सांभरिया, रत्नकुमार. धूल तथा अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2011, पृ. 33–41.
[12] सांभरिया, रत्नकुमार. बात. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 88–95.
[13] अम्बेडकर, भीमराव रामजी. संपूर्ण वाङ्मय, खंड–17. नई दिल्लीः भारत सरकार, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, 2014, पृ. 145–152.
[14] सांभरिया, रत्नकुमार. प्रतिनिधि दलित कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2013, पृ. 28–31.
[15] सांभरिया, रत्नकुमार. फुलवा एवं अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2010, पृ. 42–50.
[16] सांभरिया, रत्नकुमार. एयरगन का घोड़ा. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 56–66.
[17] सांभरिया, रत्नकुमार. बिपर सुंदर एक कीने. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2014, पृ. 71–84.
[18] सांभरिया, रत्नकुमार. धूल तथा अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2011, पृ. 33–42.
[19] सांभरिया, रत्नकुमार. बात. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 88–95.
[20] अम्बेडकर, भीमराव रामजी. संपूर्ण वाङ्मय, खंड–17. नई दिल्लीः सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, 2014, पृ. 201–208.
[21] सांभरिया, रत्नकुमार. प्रतिनिधि दलित कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2013, पृ. 34–38.
[22] सांभरिया, रत्नकुमार. एयरगन का घोड़ा. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 56–67.
[23] सांभरिया, रत्नकुमार. फुलवा एवं अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2010, पृ. 42–50.
[24] सांभरिया, रत्नकुमार. बिपर सुंदर एक कीने. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2014, पृ. 71–85.
[25] सांभरिया, रत्नकुमार. धूल तथा अन्य कहानियाँ. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2011, पृ. 33–42.
[26] सांभरिया, रत्नकुमार. बात. जयपुरः साहित्यागार प्रकाशन, 2012, पृ. 88–96.
[27] अम्बेडकर, भीमराव रामजी. Annihilation of Caste. New Delhi: Critical Quest, 2014, पृ. 45–58.